कहानी

सहपाठी

सत्यजीत राय

अभी सुबह के सवा नौ बजे हैं।

मोहित सरकार ने गले में टाई का फन्दा डाला ही था कि उसकी पत्नी अरुणा कमरे में आई और बोली, "तुम्हारा फोन।"

"अब, अभी कौन फोन कर सकता है भला!"

मोहित का ठीक साढ़े नौ बजे दफ्तर जाने का नियम रहा है। अब घर से दफ्तर को निकलते वक्त 'तुम्हारा फोन' सुनकर स्वभावतः मोहित की त्यौरियाँ चढ़ गईं।

अरुणा ने बताया, "वह कभी तुम्हारे साथ स्कूल में पढ़ता था।"

"स्कूल में। अच्छा नाम बताया?"

"उसने कहा कि जय नाम बताने पर ही वह समझ जाएगा।"

मोहित सरकार ने कोई तीस साल पहले स्कूल छोड़ा होगा। उसकी क्लास में चालीस लड़के रहे होंगे। अगर वह बड़े ध्यान से सोचे भी तो ज़्यादा-से-ज़्यादा बीस साथियों के नाम याद कर सकता है और इसके साथ उनका चेहरा भी। सौभाग्य से जय या जयदेव के नाम और चेहरे की याद अब भी उसे है लेकिन वह क्लास के सबसे अच्छे लड़कों में से एक था। गोरा, सुन्दर-सा चेहरा, पढ़ने-लिखने में होशियार, खेल-कूद में भी आगे, हाई जम्प में अव्वल। कभी-कभी वह ताश के खेल भी दिखाया करता और हाँ, कैसेबियांका का अभिनय करते हुए उसने कोई पदक भी जीता था। स्कूल से निकलने के बाद मोहित ने उसके बारे में कभी कोई खोज-खबर नहीं ली।

लेकिन आज इतने सालों के बाद अपनी दोस्ती के बावजूद और कभी अपने सहपाठी रहे इस आदमी के बारे में मोहित कोई खास लगाव महसूस नहीं कर रहा था।

खैर, मोहित ने फोन का रिसीवर

पकड़ा।

"हैलो..."

"कौन मोहित! मुझे पहचान रहे हो भाई, मैं वही तुम्हारा जय... जयदेव बोस। बालीगंज स्कूल का सहपाठी।"

"भई अब आवाज़ से तो पहचान नहीं रहा। हाँ, चेहरा ज़रूर याद है, बात क्या है?"

"तुम तो अब बड़े अफसर हो गए हो भई। मेरा नाम तुम्हें अब तक याद रहा, यही बहुत है।"

"अरे यह सब छोड़ो, बताओ बात क्या है?"

"बस यों ही थोड़ी ज़रूरत थी। एक बार मिलना चाहता हूँ तुमसे।"

"कब?"

"तुम जब कहो। लेकिन थोड़ी जल्दी हो तो अच्छा..."

"तो फिर आज ही मिलो। मैं शाम को छह बजे घर आ जाता हूँ, तुम सात बजे आ सकोगे?"

"क्यों नहीं, ज़रूर आऊँगा। अच्छा तो धन्यवाद। तभी सारी बातें होंगी।"

अभी हाल ही में खरीदी गई आसमानी रंग की कार में दफ्तर जाते हुए मोहित सरकार ने स्कूल में घटी कुछ घटनाओं को याद करने की कोशिश की। हेड-मास्टर गिरीन्द्र सुर की पैनी नज़र और बेहद गम्भीर स्वभाव के बावजूद स्कूली दिन सचमुच कैसी-कैसी खुशियों से भरे दिन थे। मोहित खुद भी एक अच्छा विद्यार्थी था। शंकर, मोहित और जयदेव - इन तीनों में ही प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती थी। पहले,

सभी चित्रः बोरखी जैन

दूसरे और तीसरे नम्बर पर इन्हीं तीनों का बारी-बारी कब्ज़ा रहता। छठी से मोहित सरकार और जयदेव बोस एक साथ ही पढ़े थे। कई बार एक ही बेंच पर बैठकर पढ़ाई की थी। फुटबॉल में भी दोनों का बराबरी का स्थान था। मोहित राइट इन खिलाड़ी था तो जयदेव राइट आउट। तब मोहित को जान पड़ता कि यह दोस्ती आज की नहीं, युगों की है। लेकिन स्कूल छोड़ने के बाद दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गए। मोहित के पिता एक रईस आदमी थे, कलकत्ता के नामी वकील। स्कूल की पढ़ाई खत्म करने के बाद, मोहित का दाखिला एक अच्छे-से कॉलेज में हो गया और यहाँ की पढ़ाई समाप्त होने के दो साल बाद ही उसकी नियुक्ति एक बड़ी कारोबारी कम्पनी के अफसर के रूप में हो गई। जयदेव किसी दूसरे शहर के कॉलेज में भर्ती हो गया था। दरअसल, उसके पिताजी की नौकरी बदली वाली थी। सबसे हैरानी की बात यह थी कि कॉलेज में जाने के बाद मोहित ने जयदेव की कमी को कभी महसूस नहीं किया। उसकी जगह कॉलेज के एक दूसरे दोस्त ने ले ली। बाद में यह दोस्त भी बदल गया, जब कॉलेज जीवन पूरा हो जाने के बाद मोहित की नौकरी वाली ज़िन्दगी शुरू हो गई। मोहित अपनी दफ्तरी दुनिया में चार बड़े अफसरों में से एक है और उसके सबसे अच्छे दोस्तों में उसका ही एक सहकर्मी है। स्कूल के साथियों में एक प्रज्ञान सेनगुप्त है। हालाँकि, स्कूल की यादों में प्रज्ञान की कोई जगह नहीं है। लेकिन जयदेव - जिसके साथ पिछले तीस सालों से मुलाकात तक नहीं हुई है... उसकी यादों ने अपनी काफी जगह बना रखी है। मोहित ने उन पुरानी बातों को याद करते हुए इस बात की सच्चाई को बड़ी गहराई से महसूस किया।

मोहित का दफ्तर सेंट्रल एवेन्यू में है। चौरंगी और सुरेन्द्र बेनर्जी रोड के मोड़ पर पहुँचते ही गाड़ियों की भीड़, बसों के हॉर्न और धुएँ से मोहित सरकार की यादों की दुनिया ढह गई और वह सामने खड़ी दुनिया के सम्मुख था। अपनी कलाई घड़ी पर नज़र दौड़ाते हुए ही वह समझ गया कि वह आज तीन मिनट देर से दफ्तर पहुँच रहा है।

दफ्तर का काम निपटाकर, मोहित जब ली रोड स्थित अपने घर पहुँचा तो बालीगंज गवर्नमेंट स्कूल के बारे में उसके मन में रत्ती भर याद नहीं बची थी। यहाँ तक कि वह सुबह टेलीफोन पर हुई बातों के बारे में भी भूल चुका था। उसे इस बात की याद तब आई, जब उसका नौकर विपिन ड्रॉइंग रूम में आया और उसने उसके हाथों में एक पुर्ज़ा थमाया। यह किसी कॉपी में से फाड़ा गया पन्ना था... मोड़ा हुआ। इस पर अँग्रेज़ी में लिखा था - "जयदेव बोस एज़ पर अपॉइंटमेंट।" रेडियो पर बी.बी.सी. से आ रही खबरों को सुनना बन्द कर मोहित ने विपिन को कहा, "उसे अन्दर

आने को कहो।"

लेकिन उसने दूसरे ही पल यह महसूस किया कि जय इतने दिनों बाद मुझसे मिलने आ रहा है, उसके नाश्ते के लिए कुछ मँगा लेना चाहिए था। दफ्तर से लौटते हुए पार्क स्ट्रीट से वह बड़े आराम से केक या पेस्ट्री वगैरह कुछ भी ला ही सकता था, लेकिन उसे जय के आने की बात याद ही नहीं रही। पता नहीं, उसकी घरवाली ने इस बारे में कोई इन्तज़ाम कर रखा है या नहीं।

"पहचान रहे हो?"

इस सवाल को सुनकर और इसके बोलने वाले की ओर देखकर मोहित सरकार की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई कि बैठक वाले कमरे की सीढ़ी पार करने के बाद भी उसने नीचे की ओर एक कदम और बढ़ा दिया - जबकि वहाँ कोई सीढ़ी नहीं थी।

कमरे की चौखट पार करने के बाद जो सज्जन अन्दर दाखिल हुए, उन्होंने एक ढीली-ढाली सूती पतलून पहन रखी थी। इसके ऊपर एक घटिया छापे वाली सूती कमीज़। दोनों पर कभी इस्तरी की गई हो, ऐसा नहीं जान पड़ा। कमीज़ की कॉलर से जो सूरत झाँक रही थी, उसे देखकर मोहित अपनी याद में बसे जयदेव से उसका कोई तालमेल नहीं बिठा सका। आने वाले का चेहरा सूखा, गाल पिचके, आँखे धँसी, देह का रंग धूप में तप-तप कर काला पड़ गया था। इस चेहरे पर तीन-चार दिनों की कच्ची-पक्की मूँछें उगी थीं। माथे के ऊपर एक मस्सा और कनपटियों पर बेतरतीब ढंग से फैले ढेर सारे पके हुए बाल।

उस आदमी ने यह सवाल झूठी हँसी के साथ पूछा था - उसकी दाँतों की कतार भी मोहित को दिख पड़ी। पान खा-खा कर सड़ गए, ऐसे दाँतों के मालिक को हँसते वक्त सबसे पहले अपना मुँह हथेली से ढाँप लेना चाहिए।

"काफी बदल गया हूँ न?"

"बैठो।"

मोहित अब तक खड़ा था। सामने वाले सोफे पर उसके बैठ जाने के बाद मोहित भी अपनी जगह पर बैठ गया। मोहित के विद्यार्थी जीवन की तस्वीर उसके एलबम में पड़ी है। उस तस्वीर में चौदह साल के मोहित को देखकर आज के मोहित को पहचान पाना बहुत मुश्किल नहीं है। तो फिर सामने बैठे जय को पहचान पाना इतना कठिन क्यों हो रहा है? सिर्फ तीस सालों में क्या चेहरे में इतने बदलाव आ जाते हैं?

"तुम्हें पहचान पाने में कोई मुश्किल नहीं हो रही है। रास्ते पर भी देख लेता तो पहचान जाता।" भला आदमी आते ही शुरू हो गया था, "दरअसल मुझ पर मुसीबतों का पहाड़-सा टूट पड़ा है। कॉलेज में ही था कि पिताजी गुज़र गए। मैं पढ़ना-लिखना छोड़कर नौकरी की तलाश में भटकता रहा और बाकी तुम्हें पता ही है। अच्छी

किस्मत और सिफारिश न हो तो आज के ज़माने में हम जैसे लोगों के लिए..."

"चाय तो पियोगे?"

"चाय, हाँ लेकिन...।"

मोहित ने विपिन को बुलाकर चाय लाने को कहा। इसके साथ उसे यह सोचकर राहत मिली कि केक या मिठाई न भी हो तो कोई खास बात नहीं। इसके लिए बिस्कुट ही काफी होगा।

"ओह!" उस भले आदमी ने कहा, "आज दिन भर न जाने कितनी पुरानी बातें याद करता रहा। तुम्हें क्या बताऊँ..."

मोहित का भी कुछ समय ऐसे ही बीता है। लेकिन उसने ऐसा कुछ कहा नहीं।

"एल.सी.एम. और जी.सी.एम. की बातें याद हैं?"

मोहित को इस बारे में पता न था लेकिन प्रसंग आते ही उसे याद आ गया। एल.सी.एम. यानी पी.टी. मास्टर लालचान्द मुखर्जी और जी.सी.एम. यानी गणित के टीचर गोपेन्द चन्द्र मितिर।

"स्कूल में पानी की टंकी के पीछे, हम दोनों को ज़बरदस्ती आस-पास खड़ा कर बॉक्स कैमरे से किसी ने हमारी तस्वीर खींची थी, याद है?"

अपने होठों के कोने पर एक मीठी मुस्कान चिपकाकर मोहित ने यह जता दिया कि उसे अच्छी तरह याद है। आश्चर्य, ये सब तो सच्ची बातें हैं और अब भी

अगर यह जयदेव न हो तो इतनी बातों के बारे में इसे पता कैसे चला?

"स्कूली जीवन के वे पाँचों साल, मेरे जीवन के सबसे अच्छे साल थे।" आने वाले ने बताया और फिर अफसोस जताया, "वैसे दिन अब दोबारा कभी नहीं आएँगे भाई!"

"लेकिन तुम तो लगभग मेरी ही उम्र के हो," मोहित इस बात को कहे बिना रह नहीं पाया।

"मैं तुमसे कोई तीन-चार महीने छोटा ही हूँ।"

"तो फिर तुम्हारी यह हालत कैसे हुई? तुम तो गंजे हो गए।"

"परेशानी और तनाव के सिवा और क्या वजह होगी?" आगन्तुक ने बताया, "हालाँकि, गंजापन तो हमारे परिवार में पहले से ही रहा है। मेरे बाप और दादा, दोनों ही गंजे हो गए थे, सिर्फ पैंतीस साल की उम्र में। मेरे गाल धँस गए हैं - हाड़-तोड़ मेहनत की वजह से और ढंग का खाना कहाँ नसीब होता है। और तुम लोगों की तरह मेज़-कुर्सी पर बैठकर तो हम लोग काम नहीं करते। पिछले सात साल से एक कारखाने में काम कर रहा हूँ, उसके बाद मेडिकल सेल्समैन के नाते इधर-उधर की भाग-दौड़, बीमे की दलाली, इसकी दलाली, उसकी दलाली। किसी एक काम में ठीक से जुटे रहना अपने नसीब में कहाँ! अपने ही जाल में फँसी मकड़ी की तरह इधर-उधर घूमता रहता हूँ। कहते हैं न 'देह धरे का दण्ड।' देखना है यह देह भी कहाँ तक साथ देती है। तुम तो मेरी हालत देख ही रहे हो!"

विपिन चाय ले आया था। चाय के साथ सन्देश और समोसे भी। गनीमत है, पत्नी ने इस बात का ख्याल रखा था। लेकिन अपने सहपाठी की इस टूटी-फूटी तस्वीर देखकर वह क्या सोच रही होगी... इसका अन्दाज़ उसे नहीं हो पाया।

"तुम नहीं लोगे?" आगन्तुक ने पूछा।

मोहित ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, अभी-अभी पी है।"

"सन्देश तो ले लो।"

"नहीं, तुम शुरू

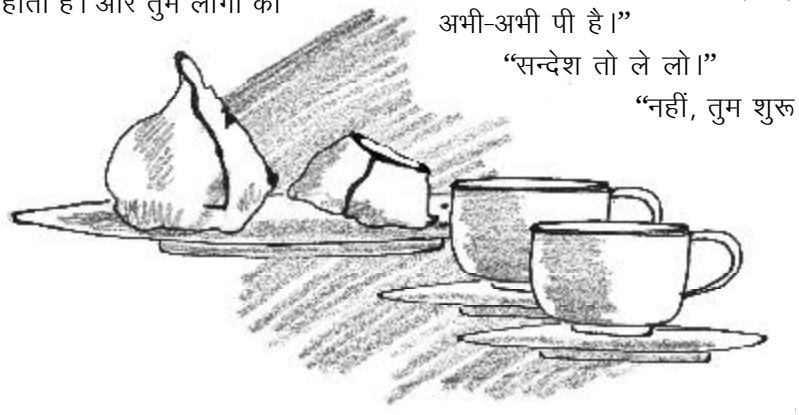

तो करो।"

भले आदमी ने समोसा उठाकर मुँह में रखा और उसका एक टुकड़ा चबाते-चबाते बोला, "बेटे का इम्तिहान सिर पर है और मेरी परेशानी यह है मोहित भाई कि मैं उसके लिए फीस के रुपए कहाँ से जुटाऊँ? कुछ समझ में नहीं आता।"

अब आगे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी। मोहित समझ गया। इसके आने के पहले ही उसे समझ लेना चाहिए था कि क्या माजरा है। आर्थिक सहायता और इसके लिए प्रार्थना। आखिर यह कितनी रकम की मदद माँगेगा? अगर बीस-पच्चीस रुपए दे देने पर पिण्ड छूट सके तो वह खुशकिस्मती ही होगी और अगर यह मदद नहीं दी गई तो यह बला टल पाएगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

"पता है, मेरा बेटा बड़ा होशियार है! अगर उसे अभी यह मदद नहीं मिली तो उसकी पढ़ाई बीच में ही रुक जाएगी।

मैं जब-जब इस बारे में सोचता हूँ तो मेरी रातों की नींद हराम हो जाती है।"

प्लेट से दूसरा समोसा उड़ चुका था। मोहित ने मौका पाकर किशोर जयदेव के चेहरे से इस आगन्तुक के चेहरे को मिलाकर देखा और अब उसे पूरा यकीन हो गया कि उस बालक के साथ इस अधेड़ आदमी का कहीं कोई मेल नहीं।

"इसलिए कह रहा था कि" चाय की चुस्की भरते आगन्तुक ने आगे कहा, "अगर तुम सौ-डेढ़ सौ रुपए अपने इस पुराने दोस्त को दे सको तो..."

"वेरी सॉरी।"

"क्या?"

मोहित ने मन-ही-मन यह सोच रखा था कि अगर बात रुपए-पैसे पर आई तो वह एकदम 'ना' कर देगा। लेकिन अब जाकर उसे लगा कि इतनी रुखाई से मना करने की ज़रूरत नहीं थी। इसलिए अपनी गलती की मरम्मत करते हुए उसने बड़ी नरमी से कहा, "सॉरी भाई। अभी मेरे पास कैश रुपए नहीं हैं।"

"मैं कल आ सकता हूँ।"

"मैं कलकत्ता के बाहर रहूँगा। तीन दिनों के बाद लौटूँगा। तुम रविवार को आ जाओ।"

"रविवार को?"

आगन्तुक थोड़ी देर तक चुप रहा। मोहित ने भी मन-ही-मन में कुछ ठान लिया था। यह वही जयदेव है, इसका कोई प्रमाण नहीं है। कलकत्ता के लोग एक-दूसरे को ठगने के हज़ार तरीके जानते हैं। किसी के पास से तीस साल पहले के बालीगंज स्कूल की कुछ घटनाओं के बारे में जान लेना कोई मुश्किल काम नहीं था।

"मैं रविवार को कितने बजे आ जाऊँ?"

"सवेरे-सवेरे ही ठीक रहेगा।"

शुक्रवार को ईद की छुट्टी है। मोहित ने पहले से ही तय कर रखा है कि वह अपनी पत्नी के साथ बारूईपुर के एक मित्र के यहाँ जाकर उनके बागान बाड़ी में सप्ताहान्त मनाएगा। वहाँ दो-तीन दिन रुककर रविवार की रात को ही घर लौट पाएगा। इसलिए वह भला आदमी जब रविवार की सुबह घर आएगा तो उससे मिल नहीं पाएगा। इस बहाने की ज़रूरत नहीं पड़ती, अगर मोहित ने दो टूक शब्द में उससे 'ना' कह दिया होता। लेकिन ऐसे भी लोग होते हैं जो एकदम ऐसा नहीं कह सकते। मोहित ऐसे ही स्वभाव का आदमी है। रविवार को उससे मुलाकात न होने के बावजूद वह भला आदमी कोई दूसरा तरीका ढूँढ़ निकाले तो मोहित उससे भी बचने की कोशिश करेगा। शायद इसके बाद किसी दूसरी परेशानी का सामना करने की नौबत नहीं आएगी।

आगन्तुक ने आखिरी बार चाय की चुस्की ली और कप को नीचे रखा था कि कमरे में एक और सज्जन आ गए। ये मोहित के अन्तरंग मित्र थे - वाणीकान्त सेन। दो अन्य सज्जनों के भी आने की बात है, इसके बाद यहीं ताश का अड्डा जमेगा। उसने भले आगन्तुक की तरफ शक की नज़रों से देखा। मोहित इसे भाँप गया। आगन्तुक के साथ अपने दोस्त का परिचय कराने की बात मोहित बुरी तरह टाल गया।

"अच्छा तो फिर मिलेंगे, अभी चलता हूँ," कहकर अजनबी आगन्तुक उठ खड़ा हुआ, "तू मुझ पर यह उपकार कर दे, मैं सचमुच तेरा ऋणी रहूँगा।"

उस भले आदमी के चले जाने के बाद वाणीकान्त ने मोहित की ओर हैरानी से देखा और पूछा,"यह आदमी तुम से 'तू' कहकर बातें कर रहा था - बात क्या है?"

"इतनी देर तक तो 'तुम' ही कहता रहा था। बाद में तुम्हें सुनाने के लिए ही अचानक 'तू' कह गया।"

"कौन है यह आदमी?"

मोहित कोई जवाब दिए बिना बुक-शेल्फ की ओर बढ़ गया और उस पर से एक पुराना फोटो एलबम बाहर निकाल लाया। फिर उसका एक पन्ना उलटकर वाणीकान्त के सामने बढ़ा दिया।

"यह तुम्हारे स्कूल का ग्रुप

है शायद?"

"हाँ, बोटोनिक्स में हम सब पिकनिक के लिए गए थे," मोहित ने बताया।

"ये पाँचों कौन-कौन हैं?"

"मुझे नहीं पहचान रहे?"

"रुको, ज़रा देखने तो दो।"

एलबम को अपनी आँखों के थोड़ा नज़दीक ले जाते ही बड़ी आसानी-से वाणीकान्त ने अपने मित्र को पहचान लिया।

"अच्छा, अब मेरी बाईं ओर खड़े इस लड़के को अच्छी तरह देखो।"

तस्वीर को अपनी आँखों के कुछ और नज़दीक लाकर वाणीकान्त ने कहा, "हाँ, देख लिया।"

"अरे, यही तो है वह भला आदमी, जो अभी-अभी यहाँ से उठकर गया," मोहित ने बताया।

"स्कूल से ही तो जुआ खेलने की लत नहीं लगी है इसे?" एलबम को तेज़ी से बन्द कर सोफे पर फेंकते हुए वाणीकान्त ने फिर कहा, "मैंने इस आदमी को कम-से-कम तीस-बत्तीस बार रेस के मैदान में देखा है।"

"तुम ठीक कह रहे हो," मोहित सरकार ने हामी भरी और उसके बाद आगन्तुक के साथ क्या-क्या बातें हुईं, उस बारे में बताया।

"अरे, थाने में खबर कर दो," वाणीकान्त ने उसे सलाह दी। "कलकत्ता अब ऐसे ही चोरों, लुटेरों और उचक्कों का डिपो हो गया है। इस तस्वीर वाले लड़के का ऐसा पका जुआरी बन जाना नामुमकिन है, असम्भव।"

मोहित हौले-से मुस्कुराया और फिर बोला, "रविवार को जब मैं उसे घर पर नहीं मिलूँगा तो पता चलेगा। मुझे लगता है इसके बाद वह इस तरह की हरकतों से बाज़ आएगा।"

अपने बारूइपुर वाले मित्र के यहाँ पोखर की मच्छी, पॉल्टरी के ताज़े अण्डे और पेड़ों में लगे आम, अमरूद, जामुन, डाब खाकर और सीने से तकिया लगा ताश खेलकर, तन-मन की सारी थकान और जकड़न दूर कर मोहित सरकार रविवार की रात ग्यारह बजे जब अपने घर लौटा तो अपने नौकर विपिन से उसे खबर मिली कि उस दिन शाम को जो सज्जन आए थे, वे आज सुबह भी घर आए थे।

"कुछ कह कर गए हैं?"

"जी नहीं," विपिन ने बताया।

चलो जान बची। एक छोटी-सी जुगत से बड़ी बला टली। अब वह नहीं आएगा। पिण्ड छूटा।

लेकिन नहीं। आफत रातभर के लिए ही टली थी। दूसरे दिन सुबह यही कोई आठ बजे, मोहित जब अपनी बैठक में अखबार पढ़ रहा था तो विपिन ने उसके सामने एक और तहाया हुआ पुर्ज़ा लाकर रख दिया। मोहित ने उसे खोलकर देखा। वह तीन लाइनों वाली चिट्ठी थी- 'भाई मोहित, मेरे दाएँ पैर में मोच आ गई है, इसलिए

बेटे को भेज रहा हूँ। सहायता के तौर पर जो थोड़ा-बहुत बन सके, इसके हाथ में दे देना, बड़ी कृपा होगी। निराश नहीं करोगे, इस आशा के साथ, इति।' - तुम्हारा जय

मोहित समझ गया कि अब कोई

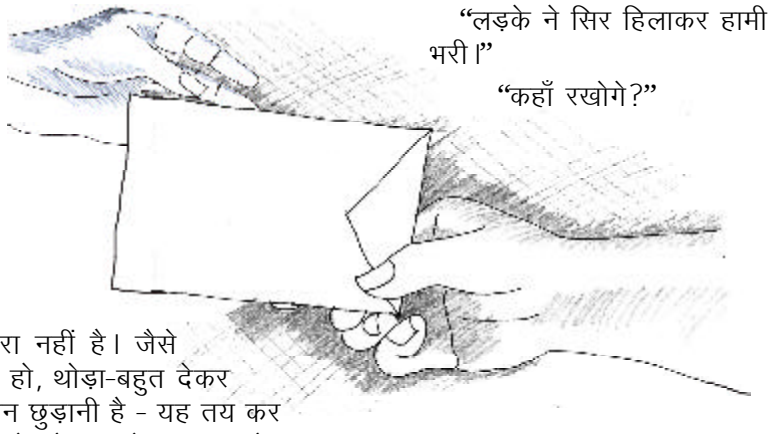

चारा नहीं है। जैसे भी हो, थोड़ा-बहुत देकर जान छुड़ानी है - यह तय कर उसने नौकर को बुलाया और कहा, "ठीक है, छोकरे को बुलाओ।"

थोड़ी देर बाद ही, एक तेरह-चौदह साल का लड़का दरवाज़े से अन्दर दाखिल हुआ। मोहित के पास आकर उसने उसे प्रणाम किया और फिर कुछ कदम पीछे हटकर चुपचाप खड़ा हो गया।

"मैं अभी आया।"

मोहित ने दूसरे तल्ले पर जाकर अपनी घरवाली के आँचल से चाबियों का गुच्छा खोला। इसके बाद अलमारी खोलकर पचास रुपए के चार नोट बाहर निकाल, उन्हें एक लिफाफे में भरा और अलमारी बन्द कर नीचे बैठकखाने में वापस आया।

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"जी, संजय कुमार बोस।"

"इसमें रुपए हैं। बड़ी सावधानी से ले जाना होगा।"

"लड़के ने सिर हिलाकर हामी भरी।"

"कहाँ रखोगे?"

"इधर, ऊपर वाली जेब में।"

"ट्राम से जाओगे या बस से?"

"जी, पैदल।"

"पैदल? तुम्हारा घर कहाँ है?"

"मिर्ज़ापुर स्ट्रीट में।"

"भला इतनी दूर पैदल जाओगे?"

"पिताजी ने पैदल ही आने को कहा है।"

"अच्छा तो फिर एक काम करो। तुम एक घण्टा यहीं बैठो, ठीक है। नाश्ता कर लो। यहाँ ढेर सारी किताबें हैं, उन्हें देखो। मैं नौ बजे दफ्तर निकलूँगा। मुझे दफ्तर छोड़ने के बाद

मेरी गाड़ी तुम्हें तुम्हारे घर छोड़ देगी। तुम ड्राइवर को अपना रास्ता बता सकोगे न?" मोहित ने पूछा।

लड़के ने सिर हिलाकर कहा, "जी हाँ।"

मोहित ने विपिन को बुलाया और उस लड़के, संजय बोस के लिए चाय वगैरह लाने का आदेश दिया। फिर दफ्तर के लिए तैयार होने ऊपर अपने कमरे में चला आया।

आज वह अपने को बहुत ही हल्का महसूस कर रहा था। और साथ ही बहुत ही खुश।

जय को देखकर पहचान न पाने के बावजूद, उसके बेटे संजय में उसने अपना तीस साल पुराना सहपाठी पा लिया था।

सत्यजीत रायः (2 मई 1921 - 23 अप्रैल 1992)**:** बीसवीं सदी के सिनेमा के महान बांग्ला फिल्म निर्माता-निर्देशक थे। वे उपन्यासकार, प्रकाशक, चित्रकार, ग्राफिक डिज़ाइनर और फिल्म आलोचक भी थे। इनकी पहली फिल्म 'पाथेर पांचाली' (1955) ने ग्यारह अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार जीते थे जिसमें कांस फिल्म महोत्सव का सर्वश्रेष्ठ ह्यूमन डॉक्यूमेंट्री भी शामिल है।
रूपान्तरणः रंजीत साहा

सभी चित्रः बोस्की जैनः सिम्बायोसिस ग्राफिक्स एण्ड डिज़ाइन कॉलेज, पुणे से ग्राफिक्स डिज़ाइनिंग में स्नातक। मध्य भारत के गोंड क्षेत्र की आदिवासी कला के अध्ययन में विशेष रुचि। भोपाल में निवास।
यह कहानी हिन्दीसमयडॉटकॉम से साभार।

hindisamay.com, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा का एक प्रयास है।
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा से एक अपेक्षा यह है कि वह हिन्दी को अंतरराष्ट्रीय भाषा बनने के लिए आवश्यक उपकरण उपलब्ध करवाए। यह तभी संभव हो सकता है जब हिन्दी गंभीर विमर्श का माध्यम बने बल्कि हिन्दी में लिखा गया महत्वपूर्ण साहित्य देश-विदेश के विशाल पाठक समुदाय तक पहुंचे। इसी क्रम में विश्वविद्यालय ने तय किया कि हिन्दी में जो कुछ भी महत्वपूर्ण लिखा गया है उसे hindisamay.com के ज़रिए दुनिया भर में फैले साहित्य प्रेमियों को उपलब्ध करवाया जाए।